IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
Impact Factor: 6.252
Volume 2, Issue 2, July 2022

उपन्यास का समाजशास्त्र और महाभोज का मूल्यांकन

डॉ. सन्तोष कुमार पाण्डेय
सहायक आचार्य
वीरभूमि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय महोबा उ0 प्र0
truthonly88@gmail.com

'उपन्यास' साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा रही है। इसे अनेक विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। आर बर्टर के अनुसार "उपन्यास गद्य में रचित कवि के समकालीन जीवन का अध्ययन है, जिसकी रचना लेखक समाज के उत्थान-पतन की भावना से अनुप्राणित होकर करता है।"[1] क्रोस के अनुसार-"उपन्यास से अभिप्राय उस गद्यमय गल्पकथा से है जिसमें वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्रण रहता है।"[2] मिशेल जेराफा ने लिखा है- "उपन्यास ऐसी कला है जिसमें मनुष्य सामाजिक और ऐतिहासिक दृष्टि से निरूपित होकर सामने आता है।"[3]

दूसरे कलारूपों की तुलना में उपन्यास का स्वरूप समाज पर अधिक निर्भर होता है और उसका विकास समाज के इतिहास के साथ होता है। लेकिन यह भी सच है कि वह एक कला है, केवल सामाजिक दस्तावेज नहीं, इसलिए सामाजिक यथार्थ जीवन के अनुभव और इतिहास की गति रचनाकार की सृजनशीलता से पुनर्रचित होकर ही उपन्यासों में आते हैं।

वर्तमान में उपन्यास की समाजशास्त्रीय आलोचना ही सर्वाधिक उचित प्रतीत होती है। "प्रायः उपन्यास के समाजशास्त्र में उपन्यासकार की वर्ग चेतना, विचार धारा या विश्वदृष्टि के सहारे उपन्यास का सामाजिक अभिप्राय जानने की कोशिश होती है। इसी प्रक्रिया में सामाजिक यथार्थ के बारे में लेखक के दृष्टिकोण के आधार पर उसकी रचना का मूल्यांकन भी होता है।"[4] अपने समाज की वास्तविकता, समय की सच्चाई और इतिहास की गति की अभिव्यक्ति उपन्यास में कई रूपों में होती रही है। रचनाकार की विचारधारा उसके रचनाकर्म में व्यक्त होती है और उसी आधार पर उसे समझा जा सकता है। प्रो० मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में- "किसी रचना की विचारधारा से उसके यथार्थवाद के संबंध की खोज तीन स्तरों पर हो सकती है- रचना की विचारधारा और यथार्थवाद की ऐतिहासिकता, रचना में दोनों का विशिष्ट स्वरूप और रचना की सम्पूर्ण संरचना में दोनों का संबंध।"[5] यहाँ विचारधारा और यथार्थवाद की ऐतिहासिकता की खोज का अर्थ है दोनों के विकास के मूल सामाजिक संदर्भ की

खोज। पाण्डेयजी ने ही अन्यत्र लिखा है- "उपन्यास के यथार्थ की खोज का मतलब किसी स्थिर, स्थायी और जड़ीभूत तथ्यात्मक यथार्थ की खोज नहीं है। यथार्थ स्थिर और स्थायी होता भी नहीं है। वह इतिहास प्रक्रिया का हिस्सा होता है। इसीलिए उपन्यासों में यथार्थ की खोज का मतलब है यथार्थ के गतिशील रूप की पहचान और उसकी संभावनाओं की तलाश।"[6] वस्तुतः श्रेष्ठ उपन्यास अपने समय का इतिहास होता है।

जहाँ तक मन्नू भंडारी के 'महाभोज' का प्रश्न है तो उपन्यास की मूल घटना है-बिसेसर नाम के एक हरिजन युवक की मृत्यु (हत्या)। पूरे उपन्यास का ताना-बाना इसी घटना के इर्द-गिर्द विकसित हुआ है। उपन्यास की संवेदना पर विचार करने से पहले यह जान लेना आवश्यक होगा कि यह घटना उपन्यासकार की कल्पना मात्र नहीं है बल्कि यह वास्तव में घटित हुई थी। मनू भंडारी ने इंटरव्यू में स्वयं स्वीकार किया था कि "मैं इन दिनों एक राजनीतिक उपन्यास 'महाभोज' पूरा करने जा रही हूं। पिछले दिनों 'बेलछी कांड' जैसी घटनाओं ने मुझे काफी उत्तेजित किया। मेरे मन का यही दर्द इस उपन्यास में गहरे और व्यापक रूप में छलका है।"[7] अतः संक्षेप में बेलछी कांड को जान लेना उपन्यास की संवेदनात्मक गहराई तक पहुँचने के लिए आवश्यक है।

बिहार प्रदेश के पटना जिले के एक गाँव बेलछी में 27 मई 1977 ई0 को चौदह हरिजनों की क्रूर हत्या कर दी गई। इसी इलाके के कुछ प्रभावशाली लोगों द्वारा यह काण्ड किया गया था। इस घटना का ब्यौरा देते हुए नवभारत टाइम्स ने लिखा "एक हरिजन की गोली मारकर हत्या कर दी गई और तेरह अन्य को हाथ-पैर बाँधकर आग में जिन्दा जला दिया गया।...... हत्या करने वाले उस गाँव के आस-पास के कुछ ऐसे प्रभावशाली लोग बताये जाते हैं जिनका नाम ही 'बंदूकधारी पार्टी' पड़ गया है। पिछले कुछ वर्षों से उन लोगों ने एक गिरोह के रूप में उस क्षेत्र में आतंक फैला रखा है। राजनीतिक दलों के कुछ प्रमुख नेताओं का प्रश्रय भी इन्हें इस बात के बदले मिलता है कि चुनाव के समय वे उन नेताओं की मदद करें। यह घटना पटना जिले के बाढ़ थाने के बेलछी गांव में हुई।"[8]

'महाभोज' में उपर्युक्त सारी बातों को उठाया गया है। अन्तर सिर्फ इतना है कि उपन्यास में हरिजनों को जलाने की घटना बिसू की हत्या के एक महीने पहले होती है। वस्तुतः इस परिवर्तन से उपन्यास अपने उद्देश्य में और भी सफल हो गया है क्योंकि उपन्यास में दिखाया गया है कि बिसू आगजनी की घटना के खिलाफ सबूत इकट्ठा करता है जिसके कारण उसकी हत्या कर दी जाती है। इससे सत्ता की असलियत ही उजागर होती है कि वह अपने विरोधियों को किसी भी प्रकार नष्ट कर देती है। उपन्यास में अपराधियों की राजनीतिज्ञों से साँठ-गाँठ व उनके मिलने वाले संरक्षण को बखूबी दिखाया गया है। घटना से स्पष्ट है कि समाज व्यवस्था पर अभी भी सवर्णों और साधन सम्पन्न लोगों का वर्चस्व है और हरिजन को अपना अधिकार नहीं मिल सका है। कीड़े मकोड़ों की तरह

उनकी मौत भी उतनी ही सस्ती और आसान है। मनू जी ने इन चीजों का एहसास काफी गहराई से किया और 'महाभोज' में उनका यह एहसास साहित्यिक रूप में व्यक्त हुआ है।

'महाभोज' सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों का एक सशक्त दस्तावेज है। इस उपन्यास की शक्ति इसकी सामाजिकता में निहित है। मन्नू भंडारी की विचार सरणि को इस अकेले उपन्यास में देखा जा सकता है। यह अकेला उपन्यास हमारे वर्तमान समाज के राजनैतिक भ्रष्टाचार को उजागर करने में पूरी तरह कामयाब है।

'महाभोज' में वर्णित कथानक से आज की राजनीति में फैले हुए भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, गुण्डागर्दी, पूँजीवाद, धोखेबाजी आदि का असली रूप सामने आता है। उपन्यास में दो शीर्षस्थ नेताओं दा साहब और सुकुल जी की राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता का एक तरह से नंगानाच है, वहीं दूसरी ओर एस०पी० सक्सेना, हीरा, लोचन और बिन्दा इस क्रूर व्यवस्था में लगातार पिसता हुआ करुण चरित्र है। यह सब कुछ मात्र कल्पना नहीं है बल्कि आज के समय और समाज की कड़वी सच्चाई है।

कहा जा चुका है कि उपन्यास की प्रमुख घटना है-बिसू की हत्या। इसी घटना के माध्यम से राजनीति के फन्दों को खोलने की कोशिश की गई है। बिसू महज एक पात्र नहीं है बल्कि वह शोषण के खिलाफ उठती हुई एक आवाज है जिसे दबा दिया जाता है लेकिन यह विद्रोह की आग बुझती नहीं बल्कि बिन्दा के माध्यम से और बाद में सक्सेना के माध्यम से जलती रहती है। संभवतः यही लेखिका का उद्देश्य भी है क्योंकि उपन्यास के समर्पण में ही मन्नू भंडारी ने लिखा है- "दुर्निवार-सम्मोहन भरी उस खतरनाक लपकती अग्निलीक के लिए जो बिसू और बिन्दा तक ही नहीं रुकती।"[९] यह महत्वपूर्ण है कि 'महाभोज' किसी व्यक्ति या साहित्यिक हस्ती के लिए समर्पित नहीं है। इससे मन्त्रू जी की रचना-दृष्टि का पता चलता है।

बिसू की मौत से जुड़ी उपन्यास की दूसरी महत्वपूर्ण घटना है-सरोहा से संबंधित विधानसभा सीट का चुनाव। इसी कारण बिसू की मौत महत्वपूर्ण बन जाती है। सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों ही बिसू की मौत से राजनीतिक फायदा उठाने के लिए तिकड़म करते हैं। लेखिका ने बड़ा ही सूक्ष्म व्यंग्य करते हुए लिखा "सच पूछा जाए तो इस समय तो सरोहा में पत्ते का हिलना भी एक घटना की अहमियत रखता है। डेढ़ महीने बाद ही तो चुनाव है।"[10]

सत्ता के दोहरे चरित्र को उजागर करता है महाभोज। इसके सशक्त उदाहरण मुख्यमंत्री 'दा साहब' हैं। 'दा साहब' का व्यक्तित्व काफी उलझा हुआ है। ऊपर से वे काफी सौम्य और गाँधीवादी लगते हैं। दा साहब जनता के हितैषी नेता के रूप में दिखाई देते हैं लेकिन वास्तविकता कुछ और है। 'अखबार की आजादी के समर्थक' और

'अखबार को राजनीति का दर्पण मानने वाले' दा साहब 'मशाल' को खरीद लेते हैं। सुकुल बाबू की सरोहा मिटिंग को जायज ठहराने वाले दा साहब घरेलू उद्योग योजना द्वारा जनता को खरीद लेने की पूरी कोशिश करते हैं। गरीबों के हितैषी दा साहब 'जोरावर' को संरक्षण प्रदान करते हैं। दा साहब का यही असली चरित्र है। दा साहब के चरित्र को देख कर गोदान के 'राय साहब' याद आते हैं जो खद्दर पहनते थे, दो बार जेल हो आये थे, शराब को हाथ नहीं लगाते थे लेकिन राय साहब भी उसी सामंती व्यवस्था के पोषक थे।

सुकुल बाबू भी दा साहब से कम नहीं हैं। सुकुल बाबू के शासनकाल में ही बिसू बिना किसी अपराध के चार साल तक जेल में बन्द था, अब सुकुल बाबू ही उसकी मौत से सर्वाधिक चिन्तित प्रतीत होते हैं। साफ है कि बिसू की मौत उन्हें चुनाव में विजय प्रदान करने के लिए वरदान प्रतीत हुई। यही नहीं, वे राजनीति से संन्यास की घोषणा भी कर चुके थे लेकिन मौका मिलते ही घोषणा भूल गये।

राजनीतिक भ्रष्टाचार का एक और पहलू-पद लोलुपता का वह संघर्ष है जो दा साहब के मंत्रिमंडल में चल रहा है। दो विरोधी मंत्री राव और चौधरी पद लोलुपता के शिकार राजनेताओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। पार्टी अध्यक्ष अप्पा साहब का सारा आदर्शवाद अपनी पार्टी के हक में ज्यादा है, जनता के हक में कम। लोचन भैया पूरे उपन्यास में अकेले ईमानदार राजनीतिक चरित्र के रूप में है लेकिन ऐसे निष्ठावान राजनीतिज्ञों का हश्र क्या होता है, यह उपन्यास से अच्छी तरह से पता चल जाता है। इस तरह महाभोज में आये नेताओं का चरित्र वर्तमान राजनीति के लगभग सभी पहलुओं को उजागर करता चलता है।

'महाभोज' की आलोचना में राजनीतिक पक्ष की चर्चा विस्तार से जरूरी थी, क्योंकि उपन्यास का मुख्य उद्देश्य ही राजनीतिक भ्रष्टाचार और लूट-खसोट को दिखाना है, जैसा कि मन्नू भंडारी ने अपने इंटरव्यू में स्वयं कहा है-"उपन्यास की मुख्य 'थीम' हमारे वर्तमान समाज की उस प्रक्रिया को उद्घाटित करना है जिसे मैंने महाभोज कहा है।.... ....इस उपन्यास में मेरा मुख्य 'कन्सर्न' लूट खसोट और भ्रष्टाचार की प्रक्रिया को उद्घाटित करना था।"

सत्ता की स्वार्थपरकता का शिकार होता है-ईमानदार अधिकारी एस०पी० सक्सेना। वह पूरी ईमानदारी से बिसू की मौत की जांच करता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि बिसू ने आत्महत्या नहीं की थी बल्कि उसकी हत्या हुई थी। सत्ता पक्ष और विपक्ष अपने-अपने राजनीतिक फायदे के लिए उसे क्रमशः आत्महत्या और हत्या सिद्ध करना चाहता है। एस०पी० सक्सेना को उसकी ईमानदारी का पुरस्कार मिलता है-सस्पेंशन आर्डर। वस्तुतः यह आज की भी राजनीतिक व्यवस्था का सच है।

पूरे मामले को सत्ता पक्ष के मुताबिक बदल देने का कार्य डी०आई०जी० को सौंपा जाता है और उसका प्रमोशन कर दिया जाता है। अन्ततः बिसू के दोस्त-जो अत्याचार के खिलाफ किये जाने वाले प्रयासों में उसका सहयोगी था-बिन्दा को उसकी मौत का अपराधी घोषित करते हुए गिरफ्तार कर लिया जाता है। बिना किसी बयान के, बिना किसी आधार के असली रिपोर्ट से बिल्कुल अलग डी०आई०जी० के पास पूरी रिपोर्ट तैयार है अकाट्य नकों से लैस और ठोस प्रमाणों से पुष्ट। यही हमारी व्यवस्था की नग्न सच्चाई है। यहां पाठक की विद्रोही चेतना भड़क उठती है और पूरी राजनीतिक व्यवस्था के प्रति घृणा का भाव भर जाता है। यह उपन्यास की सफलता है। मन्नू भंडारी पाठक में विद्रोही चेतना जगाने में कामयाब हुई हैं-यह विद्रोही चेतना बिसू या बिन्दा की ही नहीं रह जाती बल्कि महाभोज के समस्त पाठकों की हो जाती है।

अधिकांश विद्वान महाभोज को राजनीतिक उपन्यास मानते हैं। मेरे विचार से महाभोज राजनीतिक वातावरण पर आधारित सामाजिक उपन्यास है। लेखिका का सामाजिक संवेदना का एहसास लगातार बना रहता है। 'महाभोज' में समाज एवं मानव जीवन के विविध पक्षों को उनकी व्यापकता के साथ उभारा गया है। महाभोज में आने वाले वर्गों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-नेता, पत्रकार, पुलिस, किसान, नौकरशाह, क्षेत्रीय दबाव समूह आदि। आधुनिक भारत जिन वर्गों और शक्तियों पर आधारित है लगभग वे सभी इस उपन्यास में हैं।

महाभोज में अगर जातीय टकराव है तो दूसरी तरफ गाँवों में राजनैतिक संरक्षण में पनप रही क्षेत्रीय गुंडागर्दी भी अपने यथार्थ रूप में मौजूद है। समाज में फैली कुरीतियाँ और विसंगतियाँ भी लेखिका की दृष्टि में प्रधान रही हैं। 'महाभोज' के बिसू से गोदान के गोबर और होरी की याद आ जाती है। बिसू होरी और गोबर का नया संस्करण लगता है। होरी की मौत सामंती ढाँचे में पिसकर होती है जबकि बिसू की मौत प्रजातांत्रिक ढाँचे में पिसकर। जाहिर है कि फर्क आजादी के पहले और बाद के भारत का है।

महाभोज में शोषित वर्ग का चित्रण बड़ी गंभीरता और मार्मिकता से किया गया है। महाभोज का प्रधान संघर्ष दलितों का अपने हक के लिए किया गया संघर्ष है जिसकी अगुवाई बिसू करता है। अगर बिसू जीवित रहता तो आगजनी काण्ड की सच्चाई सामने आती और गाँव के शक्तिशाली तबके के लोग फँसते जिन्हें राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है।

महाभोज उपन्यास में जातीय समीकरणों, संघषों और क्षेत्रीय द्वन्द्वों को भी उभारा गया है। सरोहा गाँव जाति प्रथा से उपजे भयंकर परिणामों का दस्तावेज है। यहां टकराहट है गाँव के जोरावर सिंह और हरिजन बिसेसर की। वस्तुतः यह टकराहट दो जातियों की टकराहट है। ये जातियाँ हैं-ठाकुर और हरिजन। इसे उच्च वर्ण

और निम्न वर्ण की टकराहट कहा जा सकता है। यह आम बात है कि जब कभी सवर्णों के हितों को ठोकर लगती है, उनका पुराना शोषक रूप सामने आ जाता है। महाभोज में भी यही होता है।

महाभोज में ग्रामीण जीवन अपनी विशेषताओं के साथ मौजूद है जिसमें सामाजिक विसंगतियाँ भी हैं जिनकी तरफ संकेत लेखिका द्वारा किया गया है। जैसे-पूंजी का बढ़ता हुआ प्रभाव-दत्ता बाबू इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ग्रामीण जनता का यह सामाजिक दोष रहा है कि थोड़े से पढ़े-लिखे लोगों के बहकावे में आकर सब कुछ मान लेती है-सरोहा की जनता भी ऐसी ही है। वह सुकुल बाबू और दा साहब के जालों में फँस जाती है, उन पर विश्वास कर लेती है। उपन्यास की एक नारी पात्र रुक्मा ग्रामीण औरतों की कमजोरियों का प्रतिनिधित्व करती है। पुलिस का खौफ रुक्मा के दिमाग पर छाया हुआ है।

उपन्यास में जो समय, समाज और व्यवस्था व्यक्त हुई है, वह आज भी बहुत नहीं बदली है, बल्कि प्रायः वैसी ही है। आज भी बिहार की स्थिति वैसी ही है बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उससे भी बदतर है। उपन्यास में कुछ बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जो पात्रों के माध्यम से कही गयी हैं। जैसे बिसू के पिता हीरा का कथन- "आपै बताओ सरकार काहे लै गवा हमार बिसुआ को? बेगुनाह का जेहल भेजैका और कौनो कानून होत है का?"[11]

'महाभोज' उपन्यास में केवल कथा नहीं है बल्कि उसमें लेखिका का सामाजिक चिन्तन भी चलता रहता है। मन्नू भंडारी की विचारधारा को समझने के लिए दो चीजों पर गौर करना जरूरी है। एक तो यह महाभोज किसे समर्पित है (इस पर पीछे विचार किया जा चुका है) और दूसरा वह जो महाभोज के बारे में महाभोज में ही मन्त्र जी ने कहा- "अपने व्यक्तिगत दुख दर्द.... मगर जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना.... क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगने लगता। संभवतः इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। "12

मन्नू जी के सामाजिक चिन्तन की बस इतने से ही इति श्री नहीं मानी जा सकती। महाभोज शोषण के विरुद्ध उठने वाली आवाज का विवरण मात्र नहीं है। बल्कि उस जंग का ऐलान भी है जो बिसू की मौत और बिन्दा के कारावास के बाद भी जारी रहेगा।

मन्नू भंडारी के इंटरव्यू से एक रोचक बात सामने आयी। वह यह कि 'आपका बंटी' और 'महामोज' की पृष्ठभूमि में अन्तर जरूर है किन्तु दोनों के बीच कोई तार जुड़ा है। माँ-बाप की कशमकश के बीच सर्वाधिक तकलीफ पाता है बंटी। महाभोजों में दो दलों की कशमकश है लेकिन पिसती है आम गरीब जनता। दो की

कशमकश में कहीं तीसरा आदमी है जो पिसता है। लेखिका की दृष्टि 'सफरिंग रोल' पर जाती है चाहे वह बंटी हो, बिसू हो या बिन्दा।

महाभोज में उठा महत्वपूर्ण सवाल जो क्रान्ति के स्वर को जनतंत्र के ठेकेदारों द्वारा घोंट दिये जाने से जुड़ा है, न केवल लेखिका या उपन्यास के एक पात्र का सवाल है बल्कि यह सवाल हिन्दुस्तानी प्रजातंत्र के साये में पलने वाले उस हर व्यक्ति का सवाल है जो अपने को आजाद मुल्क का नागरिक कहता है। इस प्रकार महाभोज महज एक सामान्य उपन्यास नहीं बल्कि वह प्रगतिशील और जनसंघर्षों का सहयोगी सांस्कृतिक आन्दोलन है।

संदर्भ-संकेत

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, कृष्णदेव शर्मा, पृ० 266

2. वही

3. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय

4. हिंदी उपन्यास : एक सदी, हंस, जनवरी 1999, पृ० 39

5. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पाण्डेय, पृ० 232

6. वही, पृ० 243

7. महाभोज में सामाजिक चेतना (लघु शोध प्रबंध), मंजुलता, पृ० 37

8. वही, पृ० 52

9. मन्नू भंडारी, महाभोज, पृ० 5

10. वही, पृ० 9

11. महाभोज, मन्नू भंडारी, पृ० 95

12. वही, पृ० 6